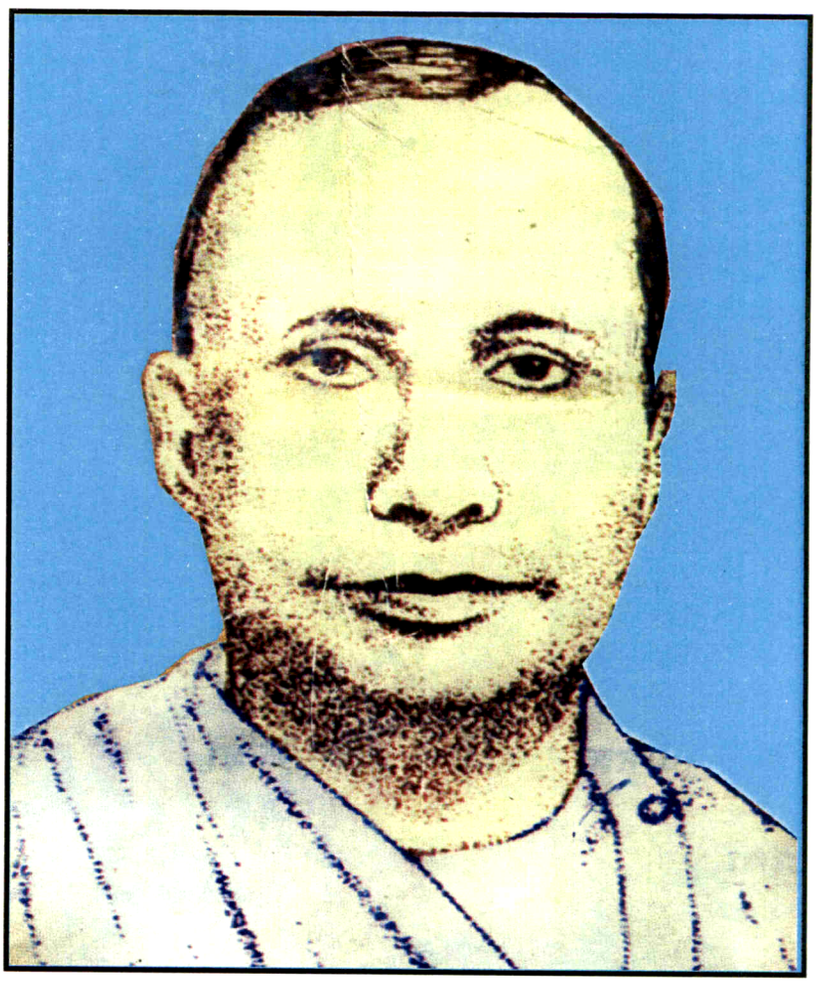

जयशंकर प्रसाद

जन्म : 30 जनवरी, 1890 मृत्यू : 15 नवम्बर, 1937

प्रसाद नारी की महती गाते हुए कहते हैं कि, ''स्त्री, जल-सदृश कोमल एवं अधिक-से-अधिक निरीह है। बाधा देने की सामर्थ्य नहीं; तब भी उसमें एक धारा है, एक गति है, पत्थरों की रुकावट की भी उपेक्षा करके कतराकर वह चली ही जाती है। अपनी सन्धि खोज ही लेती है, और सब उसके लिए पथ छोड़ देते हैं, सब झुकते हैं; सब लोहा मानते हैं।''

प्रथम अध्याय

''भारतीय साहित्य में नारी''

प्रस्तावना

पृथ्वी की इस विशाल जीव-सृष्टि में मानव प्राणी अपना अलग महत्त्व रखता है। मानव की दो महत्त्वपूर्ण ईकाईयाँ है 'नर-नारी'। मानव समाज में नारी 'नर' की तरह विशेष एवं श्रेष्ठ महत्त्व रखती है। नर-नारी दोनों समाज की उन्नति में सहायक होते हैं।

भारतीय समाज की नींव 'परिवार' संकल्पना पर आधारित है। परिवार संस्था में नर-नारी दोनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। परिवार को बढ़ाने का कार्य 'नर' करता है, तो 'नारी' इसे बनाए रखने का महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। ''जिस प्रकार तार के बिना वीणा और धूरी के बिना रथ का पहिया बेकार होता है उसी प्रकार नारी के बिना मनुष्य का सामाजिक जीवन।''[1]

भारतीय समाज ने नारी के व्यक्तित्व को अनेक बंधनों में जकड़कर रखा है। नारी पुरुष को जन्म देती है, उसे समाज में अस्तित्त्व बनाए रखने के लिए सक्षम बनाती है। वही पुरुष बड़ा होकर इस नारी को चार दीवारों में कैद कर देता है। जो नारी अपने परिवार की जिम्मेदारियों का सफलता से निर्वाह कर सकती है, वहीं नारी बाहरी दुनिया का कोई भी काम पुरुष के कंधे-से-कंधा मिलाकर उससे भी बेहतर तरीके से कर सकती है। नारी अपनी इस शक्ति को भलिभाँति पहचानती है। अतः सदियों से वह अपना अधिकार माँग रही है। विधाता ने नारी को केवल कोमल हृदयवाली एवं सुंदर नहीं बनाया; बल्कि उसको बुद्धि, शक्ति और सहनशीलता का वरदान भी दिया है। पार्वती, सीता, सावित्री, गार्गी, लक्ष्मीबाई आदि नारियाँ आदर्श नारी का प्रतिनिधित्व करती है।

युगों-युगों से नारी धर्म, इतिहास एवं साहित्य के विवेचन का विषय रही है। नारी धर्म के कठोर नीति-

नियमों का पालन करती है। धर्म के रक्षण एवं संवर्धन में नारी की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। भारतीय इतिहास पराक्रमी तथा विदुषी नारियों के उल्लेख के बगैर अधूरा रह जाएगा; कैकेयी, द्रौपदी से लेकर ताराबाई आदि नारियों ने अपने शौर्य एवं चातुर्य से इतिहास की निर्मिति की है। नारी ने अपने कार्य से धर्म, संस्कृति और साहित्य की उन्नति में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक भारतीय साहित्य ने अपनी विशाल और संपन्नता की धरोहर को संभाले रखा है। भारतीय साहित्य में प्राचीन वेद, पुराण, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथ, रामायण, महाभारत, स्मृतिग्रंथ, विविध पौराणिक ग्रंथ, बौद्ध साहित्य, संस्कृत साहित्य, अपभ्रंश साहित्य, नाथ-सिद्ध साहित्य, मध्ययुगीन काव्य तथा आधुनिक साहित्य आदि साहित्य का अंतर्भाव होता है; जो अपना मौलिक महत्त्व रखता है।

भारतीय साहित्य में 'नारी' के विविध नामोल्लेख मिलते हैं। इन विविध नामों से उसके सर्वगुण संपन्न एवं असामान्य व्यक्तित्व का पता चलता है। भारतीय साहित्य में नारी के विविध नामों का उल्लेख इस प्रकार हुआ है - पुरुष (नर) से जुड़ी होने के कारण उसे 'नारी' कहा जाता है। इसी 'स्त्री-पुरुष' संबंधित रिश्ते के कारण 'नारी' कई नामों से जानी जाती है। उसके दैहिक एवं मानसिक विशेषताओं के कारण ये नाम अपनी अर्थगत विशेषता रखते हैं। ऋग्वेद में नारी का उल्लेख 'मेना' हुआ है। पुरुष के प्रति समर्पित भाव के कारण वह 'योषा' कहलायी गयी है। पुरुष को उल्लासित रखने से 'प्रमदा', अपनी लालसा भरी वृत्ति के कारण 'ललना', स्वाभिमानी स्वभाव के कारण 'मानिनी' तथा कामना जागृत करनेवाली 'कामिनी' कहलाई जाती है।

स्त्री के समग्र अभिधानों को ध्यान में रखते हुए उसके अन्य नाम भी उल्लेखनीय है। नारी पुरुष के समतुल्य है, इसीलिए वह पुरुष की 'सहधर्मिनी' एवं 'सहचरी' है। नारी पुरुष के विजय एवं सफलता की जिम्मेदार है; इसलिए नारी का स्थान पुरुष के वाम-पार्श्व में है, इस कारण वह 'वामा' कहलाई जाती है। गृहकर्तव्यदक्ष होने के कारण 'गृहिणी' भी है। नारी अपने माता, पत्नी, पुत्री आदि रूपों में पुरुष का कल्याण करती है। इसलिए नारी पुरुष के लिए पूजनीय, सम्माननीय है, अतः वह 'महिला' नाम की अधिकारीणी है।

नारी के इन विविध नाम-रूपों से हम उसके अगाध एवं महिमामयी स्वरूप की परिकल्पना कर सकते हैं। नारी लज्जा, अनुराग, कमनीयता एवं व्यवहार-दक्षता आदि गुणों को धारण करके 'पूर्ण नारी' कहलाती है। मनुष्य जीवन का सच्चा सौंदर्य तथा सार्थकता 'नारी' में समाहीत है। महाप्राण निराला स्त्री के इस कोमल एवं मंजुल स्वरूप के बारे में लिखते है - ''साहित्य के एक पृष्ठ में एक विचक नारी-मूर्ति, तम के अतल प्रदेश में मृणाल दण्ड की तरह अपने शत-शत दलों को संकुचित-संपुटित लेकर, बाहर आलोक के देश में, अपनी परिपूर्णता के साथ खुल पड़ती है। जड़ो में प्राण संचित हो जाते हैं, अरूप में भुवनमोहिनी ज्योतिः स्वरूपा नारी।''[2]

भारतीय साहित्य में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। नारी के कई रूप है - जैसे माँ, बहन, सहचरी, प्रेयसी,

विधवा, वृद्धा और न जाने अनगिनत रूपों में नारी ने समाज एवं साहित्य की सेवा की है। प्राचीन युग में मानव जाति के उत्थान से लेकर उसके विकास एवं उत्कर्ष तक मानव की सभ्यता एवं संस्कृति को संवर्धित करने में नारी का संपूर्ण योगदान रहा है। शायद ही ऐसा कोई साहित्य होगा जिसमें 'नारी' साहित्यकारों के विवेचन का विषय नहीं रही होगी। साहित्य समाज का दर्पण है। समाज अनेक परिवारों का सम्मिलित रूप है। परिवार नर-नारी से बनता है। नारी के बिना परिवार नहीं होता। तात्पर्य साहित्य में समाज का, समाज के रूप का, सामाजिक जीवन का, समस्याओं का चित्रण होता है और ये सब नारी से जुड़े हुए होते हैं। अतः कहा जा सकता है कि साहित्य नारी के बिना निर्माण हो ही नहीं सकता; क्योंकि नारी नहीं तो परिवार नहीं और परिवार नहीं तो समाज नहीं तथा समाज के प्रश्न भी नहीं। तात्पर्य समाज का और नारी का गहरा संबंध है। साहित्य तो समाज का चित्र ही हैं। इसीलिए भारतीय साहित्य में नारी को अनेक रूपों का चित्रण हमें स्पष्ट दिखाई देता है। जिसमें नारी की महत्ता, महानता, त्याग, आदर्श आदि गुण सहज दिखाई देते है। नारी के इन्हीं विशेष गुणों के कारण ही वह विभिन्न रूपों में हमारे सामने उपस्थित हुई है। नारी के विभिन्न रूपों का विवरण इस तरह दिखाई देता है।

1.1 *नारी के विविध रूप*

नारी के विविध रूपों का आलेख प्रस्तुत करना बड़ा ही कठीन कार्य है। भारतीय साहित्य की अपनी एक विशाल प्राचीन परंपरा हैं, इसमें नारी के अनेक रूप अपना विशेष महत्त्व रखते है। प्राचीन भारतीय साहित्य में 'वेदों' को 'आदि साहित्य' कहा गया है। वेदों के पश्चात् 'ब्राह्मण-ग्रन्थों' एवं 'उपनिषदों' से होकर भारतीय साहित्य 'रामायण' एवं 'महाभारत' तक विस्तीर्ण और सम्पन्नता की धरोहर को सँभाले हुए आगे बढ़ा है। बाद में स्मृति ग्रन्थों, पुराणों और बौद्ध ग्रन्थों के रूप में प्राचीन भारतीय साहित्य विकसित हुआ है। तात्पर्य, धीरे-धीरे साहित्य का विकास होता गया और सभी भाषाओं में साहित्य रचनाएँ होने लगी। प्राचीन भारतीय साहित्य पर गौर करने से यह ज्ञात होता है कि भारतीय साहित्य की परंपरा सुदीर्घ और समृद्ध है। भारतीय साहित्य में आदि काल से लेकर आधुनिक काल तक के समाज, संस्कृति एवं परंपराओं को हम सहज रूप से देख सकते है।

विभिन्न कालों में नारी के अनेक अलग-अलग रूप हमें दिखाई देते हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए हम नारी रूपों का विश्लेषण काल-क्रमानुसार कर सकते है -

1] प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी के विविध रूप

2] आदिकालीन हिन्दी साहित्य में नारी के विविध रूप

3] मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में नारी के विविध रूप

4] आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी के विविध रूप

1.1.1 प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी के विविध रूप

प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति अत्यंत महत्त्वपूर्ण और श्रेष्ठ मानी जाती है। इस संस्कृति से हमें तत्कालीन नारी-जीवन की जानकारी प्राप्त होती है। पुरातत्ववेत्ताओं को खुदाई में हडप्पा और मोहेंजदडो में प्रागैतिहासिक युग की उच्च सभ्यता के चिह्न मिले है। प्रागैतिहासिक काल में भारत में मातृसत्ताक कुटुंब पद्धति थी अतः सहज रूप से समाज में परिवार में नारी का स्थान महत्त्वपूर्ण था। माता का - स्त्री का स्थान परिवार में सर्वश्रेष्ठ था। ''नारी की स्थिति पुरुष के बराबर ही नहीं, उससे श्रेष्ठ थी क्योंकि परिवार मातृसत्ताक था। आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक जीवन में नारी को विशेष अधिकार प्राप्त थे। ...उस काल की मूर्तियों में देवत्त्व पद पर भी स्त्री को सुशोभित करने के प्रमाण हैं।''[3] प्रागैतिहासिक काल में नारी एक उच्च स्थान पर आरूढ़ थी।

प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी चित्रण विविध रूपों में किया गया है; जिनमें नारी के महत्त्वपूर्ण चार रूप दिखाई देते है - 1] देवी 2] माता 3] पत्नी और 4] कन्या रूप। नारी का देवी और पत्नी दोनों रूपों में विशेषतः से चित्रित हुआ है। जिसका विश्लेषण निम्नलिखित रूप में किया गया है -

1.1.1.1 देवी-रूपा नारी :-

भारतीय साहित्य में 'वेदों' को हिन्दू धर्म की बुनियाद माना गया है। वेदों में 'नारी' को 'देवी' रूप में पूजा गया है। ''ऋग्वेद में सरस्वती को 'वाक्शक्ति' कहा गया है जो उस समय की नारी की वक्तृत्त्व कला और विद्वत्ता की परिचायक है। लक्ष्मी और दुर्गा के रूप में अर्थसत्ता और शक्ति की भी वह स्वामिनी थी और 'अर्धनारीश्वर' की कल्पना तो उसके समानाधिकार की पुष्टि करती है।''[4] 'पुराणों' में मुख्यतः सरस्वती, दुर्गा, लक्ष्मी तथा पार्वती इन देवियों के अलौकिक रूप को चित्रित किया गया है। 'परवर्ती संस्कृत साहित्य' में सरस्वती तथा पार्वती देवी का गुणगान किया गया है। ''वैदिक, पौराणिक और संस्कृत काव्यों में उल्लेखित ऋषि-नारियों, गुरूपत्नियों एवं अन्य संपूज्या नारियों के नाम भी देवी-तुल्य गृहीत है। लोपामुद्रा, गार्गी, अनसूया, मैत्रेयी, अरून्धती, मातंगी आदि नाम इस रूप के अर्थवाहक हैं।''[5] प्राचीन काल में भारतीय नारी सम्पति, ज्ञान तथा शक्ति की संवाहक थी; इसलिए वह 'देवी' के रूप में पूजी गई तथा प्रख्यात हुई। सारांश में नारी का देवी रूप भारतीय समाज और साहित्य में अनन्य साधारण प्रतिष्ठा का द्योतक है।

1.1.1.2 मातृ-रूपा नारी :-

नारी का 'मातृ-रूप' उसकी उदात्तता एवं महानता का प्रतीक है। भारतीय साहित्य के हर युग में 'माता' को सर्वोच्च स्थान मिला है। ''ऋग्वेदानुसार माता सर्वाधिक घनिष्ठ एवं प्रिय सम्बन्धी है - भक्त परमात्मा को

पिता की अपेक्षा माँ कह कर अधिक संतुष्ट होता है।''[6] ''ऋग्वेद में आदिति का तेजस्विनी माता के रूप में चित्रण हुआ है।''[7] मनुस्मृति में उपाध्याय, आचार्य तथा पिता से भी उच्च प्रतिष्ठा माता को दी गई है -

''उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्त्रं तु पितृन्माता गौरवेणतिरिच्यते॥''[8]

भारतीय जन-मानस में माता अपार श्रद्धा स्थान पर रही है। 'रामायण' और 'महाभारत' में माता उच्च आदर्श का प्रतीक थी। 'संस्कृत साहित्य' में ''कालीदास कृत 'रघुवंश' में नारी ....माता के रूप में प्रतिष्ठित है। अभिज्ञान-शाकुन्तलम् में मातृत्व की प्रशस्ति है।''[9] इस प्रकार का विश्लेषण वेदों में, ग्रंथों में मिलता है।

नारी का यह प्रतिष्ठित रूप केवल व्यक्ति तक सीमित न रहकर प्राकृतिक शक्तियों को भी माता-रूप में पूजा जाने लगा। भारतीय लोगों में पवित्र नदियों को भी मातृ-रूप में संबोधित किया है। उदा. - 'गंगामैया', 'यमुना मैया', 'सरस्वती मैया' आदि। इस प्रकार प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी का मातृ-रूप में पवित्र एवं गरिमामय स्थान है।

1.1.1.3 **पत्नी-रूपा नारी :-**

प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी पत्नी-रूप में सम्मान की अधिकारीणी बनीं। ''वैदिक काल में नारियाँ केवल पति की जीवन-संगिनी ही नहीं, अपितु गृह स्वामिनी और पति के साथ धार्मिक तथा आर्थिक कार्यों में समान रूप से भागीदार थी।''[10] पुराणों में भी पत्नी को कई अधिकार दिए गए हैं। उनमें पत्नी के कर्तव्यों की सूची तैयार की है। ''पुराणकाल में सावित्री, शैव्या, गांधारी, शची, सीता आदि के रूप में सती-साध्वी स्त्रियों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की गई है। इस रूप में सतीत्त्व महिमा का बखान पौराणिक आख्यानों की विशेषता रही है।''[12] ''स्मृतिकारों ने पत्नी के कतिपय अधिकारों का निर्देश किया है।''[13] जिनसे परिवार में पत्नी का स्थान और भी बढ़ गया। 'रामायण', 'महाभारत' एवं 'परवर्ती संस्कृत साहित्य' में पत्नी रूपा नारी को गौरवपूर्ण स्थान मिला है। ''रामायण और महाभारत में महिलाओं का वर्णन तप, त्याग, नम्रता, पति सेवा आदि गुणों से विभूषित गृह स्वामिनी के रूप में हुआ है।''[14] ''रामायण में सीता का शील, पतिव्रत धर्म की परिसीमा है।''[15] प्राचीन काल में नारी की महत्ता दिन-ब-दिन कम होती गयी और 'रामायण' एवं 'महाभारत' काल तक आते आते नारी के अधिकार कम होते गए तथा नारी का विवश रूप सामने आने लगा। ''महाभारत काल में पांडवों द्वारा अपनी पत्नी द्रोपदी को जुए के दाँव पर लगा देना और रामायण काल में एक धोबी द्वारा संदेह व्यक्त करने पर राम जैसे महापुरुष का भी सीता को बनवास दे देना। पत्नी पर पति के मनमाने अधिकारों की पुष्टि करता है।''[16] संस्कृत साहित्य में नारी के उदात्त स्वरूप को चित्रित किया गया है। ''कालीदास कृत

'रघुवंश' में नारी.... पत्नी रूप में प्रतिष्ठित है।''[17] 'परवर्ती संस्कृत कथा-साहित्य', 'हितोपदेश' एवं 'पंचतंत्र' में नारी चरित्र, क्षीण होता दिखाई देता है। 'पंचतंत्र' में नारी के पत्नी रूप के बारे में कहा गया है - ''नारी कभी पतिव्रता नहीं रह सकती।''[18] 'अपभ्रंश साहित्य' में तथा जैन एवं सिद्ध साहित्य में नारी प्रतिमा के गर्हित रूप का चित्रण हुआ है; उसे हीन तरह का दर्जा दिया गया है।

1.1.1.4 कन्या-रूपा नारी :-

प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी के अन्य रूपों की तरह उसके कन्या-रूप को भी महत्त्व मिला है। 'वैदिक साहित्य' में पुत्री जन्म की कामना का उल्लेख मिलता है। 'स्मृति ग्रंथों' में कन्या को पुत्र के समान रखा गया है। 'पुराणों' में ''कन्या जन्म को भी सौभाग्य सूचक माना गया''[19] है। 'रामायण' में कहा गया है कि, ''कन्या प्राप्ति लम्बी तपस्या का फल''[20] है। इस तरह भारतीय समाज और साहित्य में कन्या रूपा नारी का स्थान प्रतिष्ठित था। ''परवर्ती पुराण एवं स्मृतिकाल (900 ई.पू. से 600 ई. तक) कन्याओं की विवाह योग्य आयु 14 या 15 वर्ष हो जाने के कारण नारी की समाज में स्थिति बहुत परिवर्तित हो गयी।''[21] 'संस्कृत-साहित्य' के ''कुमार-संभव में कन्या रूपिणी नारी को तपस्विनी एवं त्यागमयी नारी के रूप में चित्रित किया गया है।''[22] परंतु जब से धार्मिक कृत्यों में पुत्र को मुक्ति पाने का साधन समझा गया, तब से पुत्री जन्म जैसे एक अभिशाप बन गया। इसीलिए कन्या जन्म को पिता के दुःख का कारण समझा गया। पंचतंत्र में कहा गया है कि - ''कन्या तो जन्म से माता-पिता की चिंता का हेतु बनती है।''[23] नारी के माता तथा पत्नी रूप को पूजने वाले इन विद्वानों ने उसके कन्या-रूप को नकारा। उत्तर मध्ययुग तक आते-आते कन्या-रूप को पूर्णतः दूषित समझा गया। उस युग में कन्या पैदा होते ही उसे मार दिया जाता था। इस प्रकार सामान्यतः साहित्य में नारी के कन्या-रूप को हीन ही समझा गया।

तात्पर्य, प्राचीन भारतीय साहित्य के वैदिक काल में नारी का पुरुष के बराबर स्थान था। वह पुरुष की तरह हर क्षेत्र में हिस्सेदार थी। वह स्वावलंबीनी थी; परंतु पुरुष ने नारी को 'देवी' के स्थान पर बिठाकर उससे सारे अधिकार छिन लिए। उसका कार्य-क्षेत्र केवल 'घर' की दीवारों में कैद होकर रह गया। वह केवल एक बुत बनकर रह गई। नारी कन्या, पत्नी, माता रूप में एक खिलौना बनकर रह गई। 'स्मृति ग्रन्थों' में, 'पुराणों' में नारी के प्रति संकुचित वृत्ति दिखाई देती है तथा इनमें नारी के प्रति घृणा भाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। अतः 'वैदिक काल' में देवी-रूप में पूजी जानेवाली नारी की गिनती क्षुद्रों में होने लगी।

1.1.2 आदिकालीन हिन्दी साहित्य में नारी के विविध रूप

आदि कालीन साहित्य में नारी अलग-अलग रूपों में दिखाई देती है। 'सिद्ध' एवं 'नाथ' साहित्य में

नारी को 'माया' का रूप बताकर उसे हीन दर्जा दिया गया। ''सिद्धों ने अपनी साधना में स्त्री को समाविष्ट किया एक उपकरण समझकर। जब तक चित्तवृत्तियाँ स्थिर नहीं होती नारी का उपभोग आवश्यक मात्र, मन स्थिर हो गया, उसकी आवश्यकता ही नहीं। सिद्ध साहित्य में नारी को साधना मार्ग में उपयोगी एक निर्जीव साधन मात्र माना गया है।''[24] इस प्रकार सिद्ध एवं नाथ साहित्य में नारी को साधन मात्र समझा गया है। रासो तथा वीर काव्य में नारी के माता तथा पुत्री रूप को गौण स्थान मिला है। इस युग के साहित्य में वेश्याओं, कुट्टनियों, परकिया, नायिकाओं तथा प्रमदाओं को प्रमुखता मिली है। रासो ग्रन्थों में - ''नारी को समाज में विशेष गौरवयुक्त स्थान नहीं प्राप्त हुआ। वीरमाता, वीरपत्नी तथा विरहिणी नारी जीवन के आयाम खुलकर व्यक्त हुए हैं। इन ग्रन्थों में.... नारी जीवन के दीन अवस्था के दर्शन होते हैं।''[25]

आदि कालीन साहित्य में नारी प्रमुखतः दो रूपों में प्रतिष्ठित हुई - 1] वीरांगना और 2] आदर्श सती। 'वीर-काव्य', 'रासो-काव्य', 'आल्हा खंड' में तथा सुर्यमल्ल और बंकिदास-कृत 'मुक्तक वीर काव्यों' में नारी के उत्साही, बलिदानी एवं प्रेरणादायिनी माता, पत्नी तथा भगिनी-रूप में वीरांगना नारियों को चित्रित किया गया है। अब्दुल रहमान तथा विद्यापति-कृत काव्य में अधिकांशतः नारी के प्रेमिका-रूप का अंकन हुआ है। ''विद्यापति अपने युग के विशिष्ट कवि थे। नारी के परंपरागत भोग्यारूप का चित्रण इनके उद्दाम कामुकतापूर्ण संयोग चित्रणों में मिलता है। राधा-कृष्ण प्रेम की व्यंजना भले ही इनके पदो में हुई हो, अधिकतर पदों में राधा-कृष्ण को साधारण नायक-नायिका के रूप में चित्रित किया गया है।''[26]

आदिकाल में नारी को केवल 'भोग्या' समझा गया, इसीकारण शादी के बाद उसे प्रतिव्रता धर्म के बंधनों में कैद किया गया। पति के निधन के पश्चात् उसका सती होना पुण्यकर्म माना गया। इस युग में नारी जीवन पूर्णतः पुरुष पर अवलंबित था। अतः इस युग की नारी रक्षिता एवं आश्रिता के रूप में चित्रित हुई है।

1.1.3 भक्तिकालीन साहित्य में नारी के विविध रूप

मध्ययुगीन साहित्य तत्कालीन समाज में प्रवाहित भक्तिधारा को समेटे हुए है। भक्तिकालीन साहित्य में नारी-रूपों के विविध पहलुओं के दर्शन होते है। 15 वीं शती में प्रवाहित इस अध्यात्मिक धारा ने समाज को भक्तिरस में भीगो दिया। इस भक्ति-साहित्य की दो-धाराएँ प्रवाहित हुई -

1] निर्गुण भक्तिधारा

2] सगुण भक्तिधारा।

इन दो धाराओं में नारी के विविध रूप दिखाई देते है -

1.1.3.1 निगुर्ण भक्ति साहित्य में नारी के विविध रूप :-

मध्ययुगीन संत-संप्रदाय ने समाज में निर्गुण भक्तिधारा को प्रवाहित किया। संत साहित्य में नारी के पतिव्रता रूप की प्रशंसा हुई है तथा उसके मायाविनी रूप की निन्दा भी की गई है। निर्गुण भुक्तिधारा के दो प्रवाह स्पष्ट दिखाई देते है -

1] ज्ञानाश्रयी शाखा

2] प्रेमाश्रयी शाखा।

'निर्गुण भक्तिधारा' के ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख संत 'कबीरदास' का नारी विषयक दृष्टिकोण उदात्त एवं पूजनीय रहा है। अन्य संत नानक, दादू ने भी इसी का निर्वाह किया है। ''कबीर के नारी विषयक दृष्टिकोण का एक आयाम उनकी अध्यात्मिकता है। भारतीय नारी की संवेदना, उसका समर्पण, पतिव्रता धर्म आदि देखकर भारतीय दर्शन ने 'आत्मा' को नारी और 'परमात्मा' को पुरुष माना है। कबीर ने भी अपने आपको ''राम की बहुरिया'' ''राम की दुलहिन'' मानकर इस परम पुरुष पति के प्रति उत्कट प्रेम अभिव्यक्त किया है।''[27] तो दूसरी ओर कबीर ने नारी के 'माया-रूप' की कठोर शब्दों में निन्दा भी की है। अन्य संतो ने भी नारी को साधना मार्ग में बाधक समझकर उसके लिए काली नागिनी, वाघिनी, पैनी छुरी, विष की बेलि, आगिनि की झाल, जूठनी आदि अनेक घृणास्पद शब्दों का इस्तेमाल कर उसकी निंदा की है। संत संप्रदाय में नारी विषयक दृष्टिकोण विरागात्मक रहा है।

निर्गुण-भक्तिधारा में प्रेमाश्रयी शाखा में नारी के प्रेमिका एवं पत्नी रूप का अधिक वर्णन हुआ है। सूफी कवियों ने नारी को 'महाविकार' नहीं समझा; बल्कि प्रेम में 'नारी' की महत्त्वपूर्ण भूमिका को पहचाना। इस धारा के प्रमुख कवि जायसी, कुतुबन, मंझन, उसमान, शेखनबी, नूर मोहम्मद आदि के काव्य में नारी का यहीं रूप दिखाई देता है। इनके साहित्य में पद्मावती, हंसावती, इन्द्रावती, मधुमालती आदि नारियाँ आदर्श प्रेमिका-रूप का निर्वाह करती है। यहीं नारियाँ आगे चलकर पति के लिए अपने-आपको चिता में झोंककर पत्नी धर्म को निभाती है। प्रेमाश्रयी-शाखा में नारी के माता तथा कन्या रूपा नारी को उतना स्थान नहीं दिया गया। सूफी साहित्य में नारीत्व को सम्मान मिला है। इन्होने नारी को ईश्वर के समकक्ष रखकर नारी प्रतिष्ठा में चार-चाँद लगाया है।

1.1.3.2 सगुण भक्ति साहित्य में नारी के विविध रूप :-

भक्ति साहित्य में सगुण भक्तिधारा दो रूपों में प्रवाहित हुई हैं -

1] कृष्ण-भक्ति और 2] राम-भक्ति।

कृष्ण-भक्ति काव्य में नारी के माता, पत्नी, प्रेमिका और पुत्री रूपों को अधिक प्रतिष्ठा मिली है। सूरदास, नंददास आदि अष्टछाप कवियों ने अपने साहित्य में नारी के लौकिक तथा अलौकिक स्वरूप के दर्शन कराए है। कृष्ण-काव्य में नारी सामान्य रूप से लेकर विशेषा रूप में प्रस्तुत हुई है। नारी के सामान्य रूप में उसके धर्म, कर्तव्यों कों बताया गया है। इसमें हमें नारी के परंपरागत रूप के दर्शन मिलते है। ''लोक प्रसिद्ध कृष्ण-कथा से नारी के जितने रूप संबध्द हो सकते थे उन सबका उल्लेख इन कवियों ने विस्तार से किया है। कृष्ण-काव्य में यशोदा और कीर्ति आदर्श माताएँ हैं। ये सन्तान के लिए सदैव सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार रहती हैं। वे संतान को बड़े स्नेह से खिला-पिलाकर उनके सम्यक पालन-पोषण में सजग हैं। वे उनकी संतुष्टि के लिए परिवार और समाज की विभिन्न मर्यादाओं का पालन करने को भी तैयार हैं।''[28] विशेषा रूप में गोपियों को 'शक्ति' रूप माना है।

कृष्ण-काव्य में संत मीराबाई ने भक्ति के माधुर्य भाव को अपनाकर अपनी भावाभिव्यक्ति को कृष्ण चरणों में अर्पित किया है। संत मीराबाई ने अपने पदों द्वारा नारी के विविध आयामों को प्रस्तुत किया है। अतः कृष्ण-भक्ति काव्य में यशोदा, राधा तथा मीरा आदि नारियों के चित्रण द्वारा नारी-रूपों को गरिमा प्रदान की गई हैं।

राम-भक्ति काव्य में राम-कथा की घटनाओं का केन्द्र मुख्यतः नारी ही रही है। रामकाव्य युगों-युगों से 'आदर्श' का वाहक रहा है। इस परम्परा में तुलसीदास लिखित 'रामचरितमानस' तो मील का पत्थर साबित हुआ है। तुलसी ने 'मानस' में मर्यादा पुरुषोत्तम राम की कथा द्वारा नारी के अनेक विविध रूपों को प्रस्तुत किया है। इसमें नारी को मर्यादायुक्त, कल्याणकारी, ममतामयी, मंगल विधायिनी आदि रूपों में प्रतिष्ठित कर समाज में एक उच्च कोटि का आदर्श प्रस्थापित किया है। 'मानस' में 'सीता' एक आदर्श पत्नी है, 'कौशल्या', 'सुमित्रा' आदि आदर्श माताएँ, 'मन्दोदरी', 'त्रिजटा', 'तारा', 'शबरी', 'आदिल्या' आदि नारियाँ रामभक्त के रूप में अपना उच्च स्थान बना चुकी है। तुलसीकृत 'रामचरितमानस' केवल नारी का ही नहीं, भारतीय समाज एवं संस्कृति में उच्चादर्श का निर्वाह करता है।

उत्तर मध्यकालीन रीतिकाव्य शृंगारिकता तथा विलासिता में डूबा नजर आता है। केशवदास, देव, मतिराम, बिहारी, भूषण, घनानन्द, बोधा आदि कवियों ने नारी के बाह्य रूप का चित्रण किया है। इन्होंने नारी के केवल मांसल देह का वर्णन कर उसके स्वकिया तथा परकिया रूप को ही उभारा है। नारी के अन्य रूप माता, भगिनी आदि को इस साहित्य में न के बराबर ही स्थान मिला है। ''रीतिकाल में नायिका का अनेक रूपों में वर्णन हुआ है, मुग्धा, नवोढ़ा से लेकर प्रोषितपतिका नायिका तक। संयोग और वियोग की सभी दशाओं का वर्णन इसमें हुआ है। यहाँ के विवेचन से स्पष्ट होता है कि नारी का कामिनी रूप का वर्णन कवियों ने चटखरे ले-लेकर

किया है।''[29] इस तरह रीतिकाल में नारी घोर वासना का शिकार हो गई थी।

तात्पर्य, मध्यकालीन कृष्णकाव्य तथा रामकाव्य में नारी को एक विशेष रूप में प्रतिष्ठा मिली है। इस साहित्य में नारी के आदर्शात्मक रूप की प्रतिष्ठा हुई है। इस काव्य में नारी भक्त, प्रेमिका, माता, पत्नी आदि रूपों में सर्वोच्च गुणों का निर्वाह करती है। पूर्व मध्यकालीन साहित्य में नारी के अनेक रूप दिखाई देते है; जो नारी के आदर्श रूप को व्यक्त करते है; किन्तु उत्तर मध्यकालीन साहित्य में परिस्थिति के परिणाम स्वरूप नारी का आदर्श रूप समय की धारा में कहीं खो गया, नारी केवल एक मादा रूप में दिखाई देने लगी। नारी को पुरुष ने केवल एक उपभोग्य वस्तु ही माना; परिणामतः इस काल के साहित्य में नारी का शृंगारी रूप ही उभर आया है। कवियों ने नारी को शृंगार का जामा पहनाकर आनंदप्राप्ति का साधन बनाया। इसकी वजह तत्कालीन समाज और परिस्थिति ही मानी जा सकती है। कवियो ने काव्य का प्रयोजन अर्थार्जन ही माना जिसकी वजह से नारी की आत्मा तक कोई पहुँच ही नहीं सका, ना ही किसीने पहुँचने का प्रयास किया। यह प्रयास कुछ मात्रा में हमें आधुनिक हिंदी साहित्य में दिखाई देता है।

1.1.4 आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी के विविध रूप

आधुनिकता का प्रभाव सभी साहित्यपर स्पष्ट दिखाई देता है। संपूर्ण विश्व के साहित्य पर आधुनिकता छा गई है। भारतीय साहित्य इससे अछूता कैसे रह पाता। तात्पर्य आधुनिकता का प्रभाव भारतीय साहित्य पर सहज दिखाई देता है या फिर यदि कहा जाए कि आधुनिकता ने भारतीय साहित्य को एक नया आयाम दिया है तो आश्चर्य की बात नहीं होगी। आधुनिकता के कारण नारी एक नए रूप में साहित्य में उभर आई।

साहित्य मनोभावाभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है, फिर चाहे साहित्य का रूप कौनसा भी क्यों न हो। काव्य हो या गद्य, उपन्यास हो या नाटक, कहानी हो या एकांकी सब मानव मन के सूक्ष्म भावों को, संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने में सक्षम होते है। काव्य में प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, निराला, पंत, महादेवी वर्मा, हरिवंशराय बच्चन, दिनकर आदि महान कवियों ने अपने काव्य में नारी-जीवन को अभिव्यक्त कर उसके विविध रूपों को सशक्त रूप प्रदान किया है। गद्य-साहित्य में प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, वृन्दावनलाल वर्मा, रांगेय राघव, सांकृत्यायन, यशपाल, कमलेश्वर, राही मासूम रजा, राजेंद्र यादव, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, अमृता प्रीतम, मृदुला गर्ग, मेहरून्निसा परवेज आदि अनेक कथा-साहित्यकारों ने नारी-जीवन के हर सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को अपनी लेखनी द्वारा साहित्य में उतारा है। नाट्य-साहित्य में प्रसाद, अश्क, विष्णु प्रभाकर, रामकुनार वर्मा आदि नाटककारों ने नारी के प्रति न्यायोचित दृष्टि रखी और उसके जीवन को प्रभावी तथा सफल रूप से प्रस्तुत किया है। इन महान साहित्यकारों

की अद्‌भुत प्रतिभा ने हिन्दी साहित्य को महत्तम योगदान दिया है।

भारतेन्दु युग से पूर्व के साहित्यकारों में देवकीनंदन खत्री, जानकीदास, गोपालराम गहमरी, किशोरीलाल गोस्वामी, श्रद्‌धाराम फुल्लौरी, बालकृष्ण भट्‌ट आदि के तिलस्मी, जासूसी तथा समाज सुधारक उपन्यासों में नारी का कोई खास रूप नजर नहीं आता। भारतेन्दु के साहित्य पर तत्कालीन सामाजिक, राजकीय, धार्मिक, बंगला साहित्य तथा पाश्चात्य साहित्य और सभ्यता का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। इन्हीं कारणों की वजह से भारतेन्दुयुगीन साहित्य में नारी पर कुछ अलग से सोच-विचार होने लगा। नारी-विषयक भोगवादी दृष्टिकोण को परिवर्तित करने के लिए नारी-जागरण, नारी-आंदोलन की शुरूआत हो गई। इस आंदोलन में प्रख्यात विद्‌वानों तथा समाज सुधारकों ने अपना योगदान दिया है। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, तथा स्वामी विवेकानंद आदि ने ब्रम्हो-समाज, आर्य-समाज, रामकृष्ण मिशन जैसी संस्थाओं के माध्यम से नारी-प्रतिमा को उँचाई प्रदान की। गोपाल कृष्ण गोखले, बाल-गंगाधर तिलक, दादाभाई नौरोजी, महात्मा गांधी आदि ने नारी-आंदोलन को उठाया और उसके हक-अधिकारों की माँग की। इन्हीं सामाजिक तथा राजनीतिक बदलावों के कारण साहित्य में भी नारी चित्रण के आयाम बदलते गए।

आधुनिक उपन्यासों में नारी-सुधार के कारण नारी-जीवन में बदलाव स्पष्ट दिखाई देता है। आधुनिक काल के प्रारंभ में उपन्यासकारों ने उपन्यास साहित्य में नारी के पक्ष में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए उपदेशात्मक उपन्यासों की रचना की। बाद में ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रचलन हुआ। प्रेमचन्द, प्रसाद, भगवती प्रसाद, वाजपेयी, 'कौशिक', सियाराम शरण गुप्त आदि साहित्यकारों ने नारी के पवित्र तथा उदात्त रूप को उपन्यास में व्यक्त किया है। जैनेंद्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी आदि ने नारी के अंतर्मन में झाँककर उसके विराट विश्व के दर्शन कराए है। महिला साहित्यकारों ने तो सारा साहित्य ही नारीमय बना दिया है। ''आधुनिक साहित्य में अर्थात् स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में नारी की समस्याओं को बहुविध आयाम मिला है। जैसे अविवाहित नारियाँ, अर्थाभाव में फँसी नौकरीपेशा नारियाँ, प्रेम और नारी, परिवार में नारी, मातृत्त्व के लिए छटपटाती नारियाँ, दहेज की समस्या, तलाक शुदा नारी आदि विषयों पर लेखको तथा लेखिकाओं ने लिखा है। जो एक स्वतंत्र संशोधन का विषय है।''[30]

तात्पर्य, नारी को केन्द्र में रखकर हिंदी साहित्य रचना करनेवाले साहित्यकारों की एक बहुत बड़ी परंपरा रही है। प्रारंभिक काव्य में नारी का परंपरागत रूप देखने को मिला लेकिन जैसे-जैसे साहित्य विकसित होता गया वैसे-वैसे विविध विधाओं में नारी के भिन्न रूपों के दर्शन होते गए। गद्‌य-साहित्य में नई शैलियों के उपयोग से नारी और भी आकर्षित रूप में प्रस्तुत हुई है। साहित्य में मनोविज्ञान के आगमन ने नारी के अंतःबाह्य स्वरूप को दर्शाकर उसके भावुक, रोमांटिक और संवेदनशील आदि विविध भावों को चित्रित किया गया है। आधुनिक

काल में साहित्य में आए परिवर्तन ने नारी-जीवन को एक नई दिशा, नई दृष्टि प्रदान की है।

1.2 नारी का नैसर्गिक या प्राकृतिक रूप

भारतीय साहित्य में प्राचीन युग से लेकर आधुनिक युग तक नारी को विविध रूपों में चित्रित किया गया है। नारी के इन रूपों के परिचय से हमारे मन में 'नारी' के प्रति जिज्ञासा जागृत होती है। एक नारी अनेक भूमिकाओं का निर्वाह कैसे करती है ? ''इतिहास के पृष्ठों पर भारत की नारी का जो चित्र अंकित है, वह अनेक रूपों वाला है - युद्ध क्षेत्र में वीरांगना के पद से शत्रुओं से लोहा लेती नारी, आंसुओं से आंचल भिगाती हुई नारी, पुरुष के इशारे पर नाचती नारी, गृहस्वामिनी नारी, श्वसुर-सास के पुर की लक्ष्मी नारी, धार्मिक रूढ़ियों से जकड़ी नारी, स्वच्छन्द नारी।''[31] वाक़ई नारी में ऐसी क्या शक्ति है जो केवल घर को ही नहीं, साहित्य-समाज तथा धर्म को भी बाँध लेती है। नारी के इन रहस्यों को सही अर्थ में समझने के लिए सबसे पहले हमें नारी के नैसर्गिक रूप को जानना चाहिए।

इस विशाल जीव सृष्टि के दो रूप दिखाई देते है - नर और मादा। जीव-जन्तु, पशु-पंछी तथा पेड़-पौधे भी इन दो रूपों में विभाजित हुए है। इस तरह पृथ्वीतल का सबसे महत्त्वपूर्ण जीव मनुष्य भी 'नर-मादा' यानी 'स्त्री-पुरुष' रूप में ही विकसित हुआ है।

नारी केवल पुरुष का ही नहीं; बल्कि संपूर्ण मनुष्य जाती का पुनःरूत्थान एवं संवर्धन करती है। अतः नारी उसके मूल स्वरूप में केवल 'मादा' होती है। उसके अन्य रूप तो सामाजिक तथा जैवकीय समायोजन की देन है।

पूरे संसार में नारी का 'मादा' रूप अपने-आप में विशेष है। परमात्मा ने नारी को ही ऐसी शक्ति दी है कि वह संसार को आगे बढ़ाने का कार्य - 'जीवोत्पत्ति' कर सकती है। इस प्रक्रिया में पुरुष की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है। नर-नारी दोनों के संयोग से ही सन्तानोत्पत्ति संभव है। इस तरह नारी-नर दोनों एक दूसरे के बगैर अधूरे प्रतीत होते है। इस संदर्भ में आचार्य चतुरसेन शास्त्री लिखते हैं - ''स्त्री अपने शरीर में अपूर्ण है और इसी प्रकार पुरुष भी। दोनों मिलकर एक होते हैं। उनका यह मिलन स्वेच्छित नहीं है प्रत्युत वे परस्पर मिलने को विवश हैं - स्त्री क्या है, यदि पुरुष न हो ? इसी प्रकार पुरुष भी, यदि स्त्री न हो ? स्त्री का स्त्रीत्त्व जैसे पुरुष के होने से ही सार्थक है, उसी प्रकार पुरुष का पुरुषत्त्व भी स्त्री के होने से सार्थक है।''[32]

तात्पर्य, स्त्री-पुरुष दोनों एक दूसरे से अभिन्न होते हुए भी दोनों अपना स्वतंत्र अस्तित्त्व रखते है। स्त्री के गर्भाशय में पल रहे गर्भ के डिम्ब में 46 वर्णतनु होते है; जितने माता के वर्णतनुओं के आधे तथा आधे पिता के शुक्राणु के वर्णतनु मिलते है। इसतरह सृष्टि-क्रम के विकास में नर-नारी दोनों समान रूप में सहभागी होते है;

इसी कारण जीव-सृष्टि में स्त्री-पुरुष अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है।

नारी नर से इतनी जुड़ी होने के बावजूद भी उसके संरचनात्मक भेद और सैक्स अंगो के कारण वह पुरुष से अलग है। साथ ही शरीरांतर्गत 'हार्मोन्स' के अंतर से दोनों के व्यवहार में काफी अंतर होता है। नारी में इस हार्मोन्स के कारण शारीरिक बनावट में बदलाव आते है। नारी को मासिक धर्म, प्रजनन अंग, डिम्बाशय तथा गर्भाशय निसर्गतः मिले होते है। इसी कारण स्त्री-पुरुष संयोग के बाद केवल नारी ही बच्चे को जन्म देने में सक्षम होती है। पुरुष केवल नव-निर्माण का हिस्सा होता है; असली जिम्मेदारी तो केवल नारी ही उठाती है। नारी नौ-माह अपने गर्भ में बच्चे को सँभालती है और अत्यंत कष्टप्रद यातनाओं को सहकर बच्चे को जन्म देती है।

नारी प्रत्यक्ष में जन्मदायी होती हैं। उसे एकसाथ अनेक भूमिकाओं को निभाना पड़ता है। वह एक तरफ पति के साथ सम्बन्ध रखती है; दूसरी ओर बच्चे का संगोपन करती है। इसतरह नारी प्रकृत्या 'मादा' रूप का सफल निर्वाह करती है। नारी के मादा रूप की सामाजिक दृष्टि से दो स्थितियाँ है - पत्नी और माता। नारी की यह स्थिति सामाजिक या पारिवारिक स्तर पर नहीं बल्कि उसके शारीरिक धरातल पर आधारित है। नारी पत्नी और माता रूप में खुद के व्यक्तित्व को विकसित करती है।

नारी-जीवन की प्रथम अवस्था 'कन्या-रूप' से आरंभ होती है। कन्या को घर की सभी जिम्मेदारियाँ निभानी पड़ती है। वह माता-पिता द्वारा दिए गए आदर्शों-संस्कारों को तथा विविध विधाओं को ग्रहण करती है। कन्या-रूप में नारी ब्रह्मचारिणी होती है। उसके यौवनावस्था में कदम रखने के पश्चात् उसका विवाह-संस्कार किया जाता है। यहाँ पर नारी का 'कन्या-रूप' पूर्णावस्था में पहुँच जाता है।

1.2.1 नारी का नैसर्गिक या प्राकृतिक पत्नी-रूप

भारतीय संस्कृति में नारी के 'पत्नी-रूप' का विशेष महत्त्व है। नारी-जीवन की यह सबसे महत्त्वपूर्ण अवस्था है, जिसमें नारी अपने पति के प्रति संपूर्ण निष्ठावान होती है। ''नारी पत्नी रूप में पुरुष को प्रेरणा, पूर्ती और उत्साह प्रदान करती है। प्रेम, मान, त्याग, सेवा, आत्म समर्पण और विश्वास की सीढ़ियों से वह पति के हृदय तक पहूँचती है।''[33] नारी अपने पत्नी-रूप में पति के प्रति समर्पणशील होती है और उस पर ही अपना सर्वस्व अर्पित करती है। नारी पुरुष के साथ केवल शारीरिक ही नहीं अपितु मानसिक तौर पर जुड़ी होती है। नारी की जिन्दगी को नर से अलग नहीं किया जा सकता।

हिन्दु धर्म में पत्नी को आदर्शवत एवं संस्कारशील आचरण करनेवाली बताया गया है। नारी नर की सहधर्मिणी, सहचारिणी मानी गयी है। पत्नी के बिना पति किसी भी प्रकार का कार्य चाहे धार्मिक हो, या सामाजिक हो करने में असमर्थ होता है। इस तरह नारी ने आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक धर्म, समाज

एवं देश में अपना अलग महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया है। वास्तव में नारी की इस स्थिति में, नारी के बिना नर और नर के बिना नारी अधूरी होती है। तात्पर्य, नारी 'पत्नी-रूप' में जीवन का आदर्श प्रस्तुत करती है।

1.2.2 नारी का नैसर्गिक या प्राकृतिक माता-रूप

नारी-जीवन में 'माता-रूप' यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं आदर्शपूर्ण स्थिति है। भारतीय परिवार में 'पत्नी' का जो स्थान है उससे कई बढ़कर वह 'माता' रूप में पूजनिय है। नारी के माता रूप में प्राकृतिक तौर पर वात्सल्य भावना सहज और स्वाभाविक होती है। नारी को 'माता-पद' की अधिकारीणी बनने के लिए नारी को नौ-माह गर्भधारणा करके मरणप्राय वेदनाओं को सहकर बच्चे को जन्म देना पड़ता है। नारी में निर्माण-क्षमता महत्त्वपूर्ण है, यदि निर्माण क्षमता न होती तो संसार आगे नहीं बढ़ता। नारी के 'ममता या वात्सल्य' को उसके व्यक्तित्त्व से जुदा नहीं किया जा सकता। नारी निसर्गतः 'माता' बनने में ही अपने जन्म की सार्थकता मानती है। नारी इसी शक्ति के बलपर पुरुष से अधिक अनेक कठोरतम आघातों को झेल जाती है। वह केवल बच्चे को जन्म ही नहीं देती, बल्कि उसपर अपनी ममता और वात्सल्य न्योछावर करती है। 'मातृत्त्व' नारी की सबसे बड़ी साधना है। माता को अपने सभी बच्चे प्रिय होते है। सृष्टि से निर्माण से लेकर सृष्टि के अंत तक नारी के 'मातृत्त्व' की गरिमा अक्षुण्ण बनी रहेगी।

नारी का माता-रूप हमेशा पुत्र और पति में फँसा रहता है। नारी अपनी दोनों भूमिकाओं को निभाने में अपनी पूरी क्षमता लगा देती है। माता का अपने बच्चे के प्रति समय और परिस्थिति से परे रक्त सम्बन्ध होता है। पुरुष की अपने बच्चे के प्रति वात्सल्य भावना उतनी नहीं होती, जितनी की माता की होती है। तात्पर्य, नारी मानव विकास का मूलबिंदू है।

इस प्रकार नारी को मादा रूप में तीन स्थितियों से गुजरना पड़ता है। उसकी पहली स्थिति कन्या-रूप में वह अपने माता-पिता द्वारा संस्कारित होती है। दूसरी स्थिति पत्नी-रूप में उसे पतिधर्म को निभाते हुए नवनिर्माण का कार्य करती है तथा तीसरी स्थिति में नारी सन्तान को जन्म देकर अपने पत्नी धर्म का पालन करती है और संसार को आगे बढ़ाती है तथा मातृत्व की जिम्मेदारी का निर्वाह करती है।

तात्पर्य, सदियों से नारी नैसर्गिक या प्राकृतिक रूप में कन्या, पत्नी और माता इन तीनों रूपों का निर्वाह सफलता से करती आ रही है और हमेशा करती रहेगी।

1.3 नर-नारी : व्यक्तित्त्व विकास की अवधारणा

आदि से लेकर आज तक के साहित्य पर गौर किया जाए तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि साहित्य में

समाज बिंबित होता है। समाज समूह से, परिवार से बनता है और परिवार नर-नारी के संयुक्त जीवन से बनता है। साहित्य में मानव जीवन का चित्रण स्पष्ट दिखाई देता है। फिर भी विशेष रूप से साहित्य निर्माण में नारी का योगदान अधिक रहा है। नारी ही साहित्य का मूल केन्द्र रही है। जब 'नारी' शब्द का उल्लेख होता है तब उसके साथ 'नर' शब्द का जुड़ जाना स्वाभाविक है। इसलिए नार-नारी के बीच के इस सम्बन्ध को जानना अत्यंत आवश्यक है।

नर-नारी दोनों आपस में अपने-अपने व्यक्तित्त्व विकास के लिए प्रयत्नरत होते है। व्यक्ति हमेशा अपने मन की इच्छानुरूप जीना चाहता है, वह खुद अपने अस्तित्त्व को तराशना चाहता है; परंतु समाज द्‌वारा मनुष्य का व्यक्तित्त्व निर्धारित किया जाता है। 'व्यक्तित्त्व' का शब्दगत अर्थ है - ''व्यक्ति की विशेषता, गुण, वह विशेषता जो किसी व्यक्ति में असामान्य रूप से पायी जाय; व्यक्त होनेका भाव।''[34] मनुष्य अपने व्यक्तित्त्व के विकास के लिए संपूर्ण जीवन भर प्रयास करता है। इसके साथ यह तथ्य मनुष्य के जीवन में महत्त्वपूर्ण है कि ''व्यक्ति में व्यक्तित्त्व तब उत्पन्न होता है जब वह संस्कृति की उपलब्धियों को आत्मसात करता है, कार्यकलाप का चेतन पात्र बनता है, जो अपनी हरकतों के लिए स्वयं जिम्मेदार है और अपनी शारिःसयत को विकसित करता है। व्यक्तित्त्व का निरूपण हर आदमी के अपने व्यक्तित्त्व के विकास के दौरान में होता है।''[35] ('Personality, is the dynamic organization within the individual of those psychophsical systems that determine his unique adjustments to his environment' - Gordon W. Allport - Personality (the psychological study of the Individual, P. 8))

मनुष्य का व्यक्तित्त्व समयानुसार विकसित होता है। मानव-प्राणी का बाल्यावस्था से लेकर वृद्‌धावस्था तक प्राकृतिक विकास होता है। मनुष्य के शारीरिक-विकास में पुनरावृत्ति नहीं होती, उसकी विकास अवस्था सदैव आगे की ओर बढ़ती है। नर-नारी व्यक्तित्त्व विकास की प्रक्रिया का संपूर्ण भिन्न स्वरूप है। सुभद्राकुमारी चौहान कहती है - ''मनुष्य की आत्मा स्वतंत्र है, फिर चाहे वह स्त्री शरीर के अंदर निवास करती हो, चाहे पुरुष शरीर के अंदर इसी से पुरुष और स्त्री का अपना-अपना व्यक्तित्त्व अलग रहता है।''[36]

एक ओर तो स्त्री-पुरुष दोनों एक दूसरे से भिन्न है तो दूसरी ओर दोनों एक रूप भी है। यही भिन्नता और समानता का द्‌वंद्‌व इन दोनों की नियति में है। नर-नारी में जन्मजात भेद होता है। भले ही उनके कान, नाक, आँख, जिव्हा और त्वचा यह पंचेन्द्रिय समान रूप से कार्य करते हो। शरीर-विज्ञान में लिंग भेद के कारण शरीररांतर्गत जैवकिय प्रक्रिया का ढाँचा स्त्री-पुरुष को अलग करता है। शरीर विज्ञान में स्त्री-पुरुष के बाह्य तथा अंतर्जगत की भिन्नता को स्पष्ट किया गया है।

प्राणी जगत् में सभी प्राणी भय, निद्रा, आहार, मैथून आदि नैसर्गिक क्रियाएँ करते हैं; परंतु इन सब में

मनुष्य को उसका व्यक्तित्त्व ही अन्य प्राणियों से अलग करता है। स्त्री-पुरुष की जैवकिय संरचना परस्पर भिन्न है; परन्तु वह एक दूसरे के पूरक भी है। स्त्री निसर्ग गुण से भावुक, कोमल, शर्मिली होती है, तो पुरुष में मर्दानगी, धीरज, शूरत्त्व आदि गुणों का सन्निवेश होता है। मूलतः स्त्री-पुरुष आक्रमक होते है। नारी प्रकृत्या जननी होने के कारण उसमें यह आक्रमकता कम होती है। तुलना में पुरुष किसी भी जिम्मेदारी से मुक्त होता है। नारी में सेक्स और मातृत्त्व भाव नैसर्गिक तौर पर मौजूद होते है। इस प्रकार ''स्त्री-पुरुष परस्पर एक दूसरे के पुरक होते हैं। वे दो विपरीत दिशा में चलते अवश्य हैं, किन्तु जहाँ मिलते हैं, वही संसार व समाज पलता है।''[37]

'नर और नारी' का व्यक्तित्त्व एक-दूजे के सानिध्य में विकसित होता है। अतः नर-नारी दोनों ही आपस में व्यक्तित्त्व विकास के लिए सहायक होते है। नर-नारी के व्यक्तित्त्व विकास सम्बन्धी भारतीय एवं पाश्चात्य विचारों को देखना अत्यंत आवश्यक है। साथ ही आधुनिकता के प्रभाव से नर-नारी के व्यक्तित्त्व विकास पर होने वाले प्रभाव को स्पष्ट करना आवश्यक है।

1.3.1 नर-नारी व्यक्तित्त्व विकास के सम्बन्ध में भारतीय एवं पाश्चात्य विचार

नर-नारी व्यक्तित्त्व विकास की प्रक्रिया के बारे में भारतीय एवं पाश्चात्य चिंतकों ने अपने अलग-अलग विचार रखे है। इन विचारों की वजह से 'नर-नारी व्यक्तित्त्व' हमारे सामने सूक्ष्मता से उभरता है। भारतीय विचारकों की दृष्टि से मनुष्य का विकास उसके शारीरिक स्तर पर ना होकर उसके आत्मिक स्तर पर होता है। मनुष्य के शारीरिक विकास के लिए भौतिक साधनों की आवश्यकता होती है। मनुष्य अपने दैनंदिन जीवन में अपनी इसी बाह्य दुनिया में फँसा रहता है; लेकिन जब वह इस भौतिक दुनिया से उठकर अध्यात्मिक स्तर पर पहूँचता है तो उसे आत्मिक शांति मिलती है। मनुष्य इसी आत्मिक शांति की खोज में परमात्मा को याद करता है। मनुष्य के इस आत्मिक विकास में नर-नारी भेद नहीं होता। दोनों जीव एक सामान्य धरातल से उठकर परमात्मा की सेवा में लीन होकर अपना असामान्य जीवन जी सकते है। इस तरह भारतीय चिंतक नर-नारी व्यक्तित्त्व विकास के लिए अध्यात्मज्ञान की आवश्यकता को जोड़ते है परंतु पाश्चात्य विचारों का मत भारतीय मत से बिल्कुल अलग है।

पाश्चात्य चिंतकों ने आधुनिक बोध को स्वीकार करके भारतीय आध्यात्मिक चिंतन का अस्वीकार किया है। पाश्चात्य आलोचक शरीर और आत्मा के भेद को नकारते है। उनके विचारानुसार, मनुष्य अपने विकास के लिए समाज तथा प्रकृति से द्वंद्व करता है। डार्विन का 'विकास वाद' और कार्ल मार्क्स का 'द्वंद्वात्मक भौतिक वाद' यह सिद्धांत इसी विचार को बढ़ावा देते है। कार्ल मार्क्स अपने सिद्धांत में मनुष्य के आर्थिक स्थिति को महत्त्व देता है। मनुष्य को अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साधन-

सम्पत्ति की जरूरत होती है। मनुष्य इसी साधन-सम्पत्ती के निर्माण में अपने जीवन का ज्यादातर हिस्सा बिताता है। मनुष्य का आत्मिक विकास नितांत वैयक्तिक अनुभूति है। इसकी वजह से व्यक्तित्त्व का ज्यादातर विकास मनुष्य के भौतिक स्तर पर निर्भर होता है। अतः मनुष्य के व्यक्तित्त्व विकास में भौतिक स्तर अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा मनुष्य का आत्मिक विकास उसके उदात्त स्वरूप को बढ़ावा देता है।

इस प्रकार भारतीय तथा पाश्चात्य आलोचकों का नर नारी व्यक्तित्त्व विकास अवधारणा संबंधी विचारों का साहित्य तथा समाजपर स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। नर-नारी व्यक्तित्त्व विकास प्रक्रिया में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक आए हुए बदलाव को साहित्य के माध्यम से देखा जा सकता है।

1.3.2 आधुनिकता के प्रभाव स्वरूप नर-नारी व्यक्तित्त्व विकास

मानव के व्यक्तित्त्व का विकास परिस्थिति के परिणामस्वरूप होता है। आधुनिक युगीन परिस्थितियों ने परंपरा को झकझोर दिया है। परिणामतः आधुनिक मानव में अमूलाग्र बदलाव आया है। ''बदलते संदर्भो में यदि नारी की भूमिका बदली है तो पुरुष की भी। मगर अभी भी नारी की भूमिका में सेवा, त्याग, समझौता, दीनता, समर्पण और हीनता की भावनाओं को ही महत्त्व दिया जाता है। अभी भी उसकी बौद्धिक क्षमता और व्यक्तित्त्व को नकारने की मानसिकता बनी हुई है, अतः कही दबाव और तनाव है तो कही विद्रोह और स्वच्छन्दता का आग्रह। मुख्य रूप से अहंभाव का टकराव सर्वाधिक है।''[38]

आधुनिक नारी परंपरा से बाहर आने का प्रयास कर रही है। वह परिस्थिति, परंपरा के घेरे से मुक्ति की ओर बढ़ रही है। सदियों से चली आ रही पाप-पुण्य की परिभाषा को बदलने की कोशिश कर रही है। ''आज की नारी सभी क्षेत्रों में पुरुष से होड़ ले रही है, जीवन की दौड़ में उसे पछाड़ रही है। शरीर की दुर्बलता की पूर्ति वह अध्यवसाय और तल्लीनता से कर रही है। वह यह दिखाने के लिए प्रयत्नशील है, कि जीवन विकास के जिन शिखरों पर पुरुष नहीं पहुँच सका उस पर पहूँचने में नारी सक्षम और समर्थ है।''[39] आधुनिक नारी का व्यक्तित्व आक्रमक है। उसके अंदर विद्रोह, स्व-व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा आदि भाव सहज दिखाई देते है। आज की नारी पुरुष के दृष्टिकोन से नहीं सोचती। वह अपनी बुद्धि का खुद इस्तेमाल करके वैचारिक क्रान्ति लाने में सफल हुई। आज की नारी अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व एवं अस्मिता की पहचान कराना चाहती है। उसका नजरिया बदल चुका है। परंपरागत दृष्टिकोण में बदलाव आ रहा है। यह परिवर्तन शिक्षा और स्वतंत्रता के कारण हुआ है।

नर-नारी के अपने जीवन के प्रति मायने ही बदल गए है। आधुनिकता के मोह में फँसकर नर-नारी दोनों अपने मर्जी से जीवन जीना चाहते है। नारी निर्बंध होकर खुली हवा में विचरण कर रही है; परंतु यह आधुनिक नारी अस्तित्ववाद का जामा ओढ़े नितांत वैयक्तिक, कुण्ठित तथा अवसादपूर्ण तरीके से अपना जीवन यापन

कर रही है। स्त्री-पुरुष के रिश्ते में भी बदलाव आए है। ''पुरूष भी अकेला कुछ नहीं कर सकता है। स्त्री-पुरुष दोनों पृथक होते हुए पूरे है, पूरे होते हुए एक-दूसरे के बिना अधुरे हैं। संघर्ष भी केवल नारी के हिस्से में नहीं है। पुरुष भी अपने जीवन में पग-पग पर शोषित उत्पीड़ित और आहत होता है।''[40] आधुनिक युग में नर और नारी दोनों अपनी वैयक्तिकता को बनाए रखने में लगे है।

युग-परिवर्तन से नर-नारी के बीच स्वच्छंदता, स्वैराचार तथा मुक्त आचरण फैलने लगा है। यौन-सम्बन्धो को लेकर दोनों के विचार परिवर्तित हो गए है। नारी अपने पवित्रता धर्म को जैसे भूलती जा रही है। पुरुष भी विवाह पूर्व सेक्स तथा विवाहोत्तर सेक्स में फँसा है। दोनों के व्यक्तित्व में नैतिकता-अनैतिकता का कहीं भी अता-पता नहीं चलता है। नर-नारी की इस स्थिति को देखकर ऐसा लगता है कि भारतीय संस्कारों की जड़ें हिल-सी गई है। पाश्चात्य साहित्य, संस्कृति तथा दर्शन का गहरा प्रभाव नर-नारी के वर्तन में परिलक्षित होता है।

नर-नारी एक ओर परम्परागत आदर्श एवं संस्कारों में तो दूसरी ओर आधुनिकता की भूमिका में फँसे नजर आते है। इसके कारण वह मानसिक कुण्ठा के शिकार हो रहे है। नर-नारी के पति-पत्नी रूप में सबसे ज्यादा इस बदलाव को देखा जा सकता है। दोनों के रिश्तों में आए खटास के कारण दूरियाँ बढ़ती जा रही है। हिन्दी साहित्य में आधुनिक युग की विवंचना में फँसे नर-नारी के दर्शन सहज होते है। हिन्दी-उपन्यास साहित्य में भी नर-नारी जीवन के विभिन्न आयामों को देखा जा सकता है।

तात्पर्य व्यक्तित्व विकास में मानवीय भावना, मानसिक क्षमता तथा शारीरिक बनावट का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। व्यक्तित्व विकास में परिस्थिति अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है। आधुनिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप नर-नारी व्यक्तित्व में अनेक बदलाव आए है; फिर भी सृष्टि संचालन में दोनों का समान योगदान आज भी आवश्यक है।

निष्कर्ष

भारतीय साहित्य में 'नारी' महत्त्वपूर्ण रही है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक के साहित्य में नारी के विभिन्न पहलुओं के दर्शन होते है। आदिकाल में नारी विरांगना, विदूषि, साध्वी आदि रूपों में पूजनीय थी। मध्यकाल में एक ओर नारी का कामिनी, विलासिनी आदि रूपों में नख-शिख चित्रण किया गया तो दूसरी ओर उसे सती, वीर-माता, वीर-पत्नी आदि उपाधियों से भी विभूषित किया गया। आधुनिक युग में नारी मूल्यों में तेजीसे बदलाव आने लगे। आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी के वैयक्तिक एवं स्वच्छन्द रूप का अत्याधिक चित्रण हुआ है। आधुनिक युग में आए अनेक वादों ने एवं पाश्चात्य मनोविज्ञान ने नारी मन की जटिल संरचना

को खोलकर रख दिया है।

विभिन्न युगों में चित्रित नारी के इन सतरंगी रूपों को देखकर नारी के धैर्य, साहस एवं सहनशील वृत्ति के सामने हमारा सिर नतमस्तक होता है। मूलतः नारी अपने नैसर्गिक रूप में मादा धर्म का निर्वाह करती है। दूसरी ओर कन्या, पत्नी और माता इन प्रमुख तीन रूपों में अपनी भूमिका का निर्वाह करती है। नारी का अपने जीवन में पुरुष के साथ सदा टकराव होता है। जीव सृष्टि में मानव प्राणी दो रूपों में विभाजित होता है - नर और नारी। नर और नारी की जैविक संरचना पूर्णता भिन्न होती है, इस कारण उनमें विरोध की मात्रा ज्यादातर नजर आती है, परंतु विधाता की सबसे सुंदर कृति यह 'मानव' है, इसके वृद्धि एवं विकास के लिए नर-नारी संयुक्तिक रूप से प्रयत्नरत होते है। नर-नारी दोनों मिलकर इस मानव-जीवन को सफल एवं सुंदर बनाते है। इसलिए नर-नारी उपरी तौर पर कितने ही भिन्न दिखाई देते हो, मगर आंतरिक रूप में वे दोनों अभिन्न रूप से जुड़े हुए है।

नारी की विशेषता ही है वह हर स्थिति में अपने आप को ढाल सकती है। परिस्थिति और समय के अनुसार अपने रूप परिवर्तन को स्वीकारते हुए उस जिम्मेदारी को निभाने का प्रयास करती है और उसमें सफल भी होती है।

तात्पर्य नारी जीवन बहता जल है हर स्थिति में सफलता पाता है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. राजगुप्ता - जयशंकर प्रसाद के साहित्य में नारी, पृ. 46
2. डॉ. सूतदेव - उपन्यासकार चतुरसेन के नारी पात्र, पृ. 3
3. आशारानी व्होरा - भारतीय नारी दशा दिशा, पृ. 3-4
4. शैलजा माहेश्वरी - हिन्दी व्यंग्य साहित्य में नारी, पृ. 45
5. डॉ. सूतदेव - उपन्यासकार चतुरसेन के नारी पात्र, पृ. 6
6. डॉ. विमल शर्मा - साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूप, पृ. 1
7. डॉ. जे. एम्. देसाई - आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी, पृ. 17
8. सं. वे. शा. सं. पंडित रामचंद्रशास्त्री अंबादास जोशी - मनुस्मृति (मराठी), पृ. 49
9. डॉ. विमल शर्मा - साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूप, पृ. 4
10. डॉ. रामसुन्दर लाल - प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में नारी मनोविज्ञान, पृ. 21
11. डॉ. विमल शर्मा - साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूप, पृ. 4
12. वही, पृ. 4
13. वही, पृ. 4

14. शैलजा माहेश्वरी - हिन्दी व्यंग साहित्य में नारी, पृ. 46
15. डॉ. सौ. जे. एम्. देसाई - आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी, पृ. 18
16. आशारानी व्होरा - भारतीय नारी दशा-दिशा,पृ. 6
17. डॉ. विमल शर्मा - साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूप, पृ. 4
18. वही, पृ. 5
19. वही, पृ. 4
20. वही, पृ. 2
21. डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी - कालिदास एवं भवभूति के नारी पात्र, पृ. 15
22. डॉ. विमल शर्मा - साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूप, पृ. 5
23. वही, पृ. 5
24. डॉ. सौ. जे. एम्. देसाई - आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी, पृ. 25
25. वही, पृ. 29
26. वही, पृ. 31
27. वही, पृ. 31
28. डॉ. विमल शर्मा - साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी के विविध रूप, पृ. 9
29. डॉ. शैलजा माहेश्वरी - हिन्दी व्यंग्य साहित्य में नारी, पृ. 174
30. वही, पृ. 176
31. बिजली प्रभा प्रकाश - जैनेन्द्र के उपन्यासों के नारी चरित्रों का मनोवैज्ञानिक धरातल, पृ. 60
32. डॉ. सूतदेव - उपन्यासकार चतुरसेन के नारी-पात्र, पृ. 388
33. डॉ. सौ. जे. एम्. देसाई - आधुनिक काव्य में नारी, पृ. 14
34. हिन्दी बृहद कोश, पृ. 1095
35. डॉ. गणेश दास - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में नारी के विविध रूप, पृ.
36. उमेश माथुर - आधुनिक युग की हिन्दी लेखिकाएँ, पृ. 241
37. जेकब शशि - महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता, पृ. 45
38. डॉ. सुदेश बत्रा - नारी अस्मिता हिन्दी उपन्यासों में, पृ. 58
39. डॉ. भोलानाथ तिवारी - निबन्ध - प्रभाकर, पृ. 240
40. गोविन्द रजनीश - पुनश्चिंतन - गोविन्द, पृ. 111